पूर्व मध्यकालीन भारत

" पूर्व मध्यकालीन भारत में सामाजिक गतिशीलता की प्रक्रिया जातिगत पदानुक्रम, धार्मिक वैधता, आर्थिक परिवर्तन और राजनीतिक संरक्षण में जटिल अंतःक्रिया" (भाग - 1)

पूर्व मध्यकालीन भारत (लगभग 6वीं से 13वीं शताब्दी ईस्वी) एक ऐसा संक्रमणकालीन दौर था जिसने भारतीय समाज में गहन परिवर्तन देखे। इस काल में सामाजिक गतिशीलता, जिसे व्यक्तियों या समूहों के सामाजिक पदानुक्रम में ऊपर या नीचे जाने के रूप में समझा जा सकता है, एक जटिल प्रक्रिया थी। यह केवल जन्म पर आधारित नहीं थी, बल्कि इसमें जाति व्यवस्था की अंतर्निहित कठोरता के बावजूद धार्मिक, आर्थिक और राजनीतिक शक्तियों की गतिशील अंतःक्रिया भी शामिल थी। इन विविध कारकों ने मिलकर एक ऐसी सामाजिक संरचना का निर्माण किया जो न तो पूरी तरह स्थिर थी और न ही पूरी तरह तरल, बल्कि निरंतर पुनर्गठन के दौर से गुज़र रही थी।

पूर्व मध्यकालीन भारतीय सामाजिक संरचना का पुनर्गठन :-

पूर्व मध्यकालीन भारत में सामाजिक गतिशीलता और संरचना के पुनर्गठन में निम्नलिखित कारक महत्वपूर्ण थे:

1. जातिगत पदानुक्रम (Caste Hierarchies)

- जातियों का गुणन और उप-जातियों का उदय: इस काल में जातियों की संख्या में उल्लेखनीय वृद्धि हुई। व्यवसाय, स्थान और नए क्षेत्रों के आधार पर नई जातियाँ उभरीं, जबकि पुरानी जातियों की स्थिति में गिरावट आई। उदाहरण के लिए, विभिन्न शिल्पों में लगे कारीगरों के समूह धीरे-धीरे जातिगत पहचान में कठोर होते गए।

- वर्ण-संकर और अस्पृश्यता: अनुलोम-प्रतिलोम विवाहों से उत्पन्न वर्ण-संकर जातियों की संख्या बढ़ी। अस्पृश्यता की भावना प्रबल हुई और अछूतों (जैसे चांडाल, डोम, चर्मकार) के लिए नियमों को अधिक विस्तृत और कठोर बनाया गया। ग्यारहवीं शताब्दी तक कई पेशेवर जातियों को अछूतों की श्रेणी में शामिल कर लिया गया।

- ब्राह्मणों की सर्वोच्च स्थिति: ब्राह्मणों का सामाजिक पदानुक्रम में शीर्ष पर स्थान बना रहा। उन्हें भूमि अनुदानों के माध्यम से ग्रामीण समुदायों पर वर्चस्व स्थापित करने और कर वसूलने तथा कानून व्यवस्था बनाए रखने जैसे अधिकार प्राप्त हुए। हालांकि, ब्राह्मणों में भी वेदों के ज्ञान के आधार पर कई उप-वर्ग बन गए।

- क्षत्रिय और राजपूतों का उदय: कई नए समुदायों, जिन्हें सामूहिक रूप से राजपूत के रूप में जाना जाता है, को क्षत्रिय का दर्जा मिला। यह प्रक्रिया अक्सर युद्ध कौशल और राजनीतिक शक्ति के माध्यम से होती थी, जिससे जातिगत पदानुक्रम में बदलाव आए।

2. धार्मिक वैधता (Religious Legitimation)

ब्राह्मणवादी धर्म का प्रभाव: ब्राह्मणवादी धर्म, विशेषकर शैव और वैष्णव संप्रदायों का प्रभाव व्यापक था। मंदिरों और मठों को बड़े पैमाने पर भूमि अनुदान दिए गए, जिससे वे आर्थिक और सामाजिक शक्ति के केंद्र बन गए। ब्राह्मणों ने इन धार्मिक संस्थाओं के माध्यम से अपनी स्थिति को और मजबूत किया।

भक्ति आंदोलन और तांत्रिक उपासना: भक्ति आंदोलन (जो दक्षिण भारत में आरंभ हुआ) और तांत्रिक उपासना पद्धतियों ने जातिगत भेदभाव को चुनौती दी और सामाजिक समानता का संदेश दिया। इससे निम्न जातियों के लोगों को धार्मिक और सामाजिक रूप से ऊपर उठने का अवसर मिला, हालांकि यह चुनौती हमेशा सफल नहीं रही।

धार्मिक रूपांतरण: कुछ निम्न जातियों के लोगों ने अत्याचारों से बचने या बेहतर सामाजिक स्थिति प्राप्त करने के लिए इस्लाम धर्म स्वीकार किया, हालांकि यह उनके सामाजिक उत्थान की गारंटी नहीं था।

नए धार्मिक विचारों का प्रभाव: जैन आचार्य अमितगति जैसे विद्वानों ने जाति का निर्धारण आचरण से माना, न कि जन्म से। बौद्ध और जैन धर्मों ने भी जाति-पाति का विरोध किया, विशेषकर पश्चिमी और दक्षिणी भारत में।